जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- ८६
देवशक्तियों का पूजन कैसे करें
(प्रवचन)
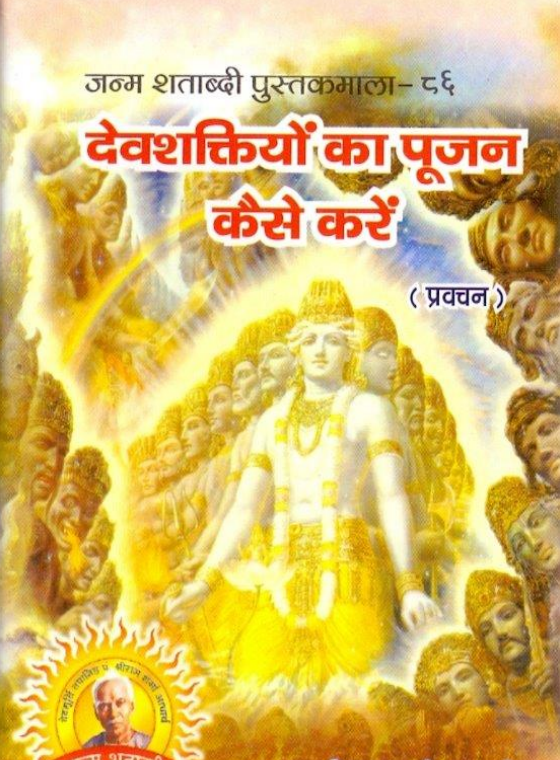
देव शक्तियों का पूजन कैसे करें?

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मित्रो, पहले हमने आत्मशोधन की क्रिया बताई थी। अब गायत्री की पंचमुखी साधना का दूसरा वाला चरण बताता हूँ, जिसका नाम है, 'देवपूजन'। देवपूजन किसे कहते हैं ? बेटे, इस बारे में तो हम बताते रहते हैं कि गायत्री माता का एक फोटो रख लेना। हाँ, वह तो मैंने रख लिया है। और बेटे, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत चढ़ा दिया करना, चंदन लगा दिया करना। हाँ गुरुजी, वह तो मैं लगा देता हूँ। इसमें क्या रखा है ? वह तो मैंने एक छोटी सी डिबिया में रख लिया है और एक डिब्बी में धूपबत्ती भी रख ली है। हाँ बेटे, तूने यह बहुत अच्छा किया। महाराज जी, मैंने सेंट भी रखा हुआ है। यह तो और भी अच्छा किया। बेटे, नैवेद्य कितने

पैसे का लाया था? गुरुजी, पच्चीस पैसे का लाया था। इससे दो महीने का काम चल जाता है। दो इलायची दाने रख देता हूँ। बेटे, तेरा नैवेद्य का काम तो बहुत बढ़िया है। यह तो बहुत दिन चल जाता होगा? हाँ महाराज जी, इसके अलावा और कमी हो तो मुझसे कहिए।

उपासना में मन को लगाइए

हाँ बेटे, तेरी उपासना में एक कमी है। तू यह सारी की सारी क्रियाएँ करने के साथ में उपासना में मन को क्यों नहीं लगाता। जब भी कोई क्रिया करे, तो उसमें अपने मन को लगा लिया कर। इन वस्तुओं के साथ में जो शिक्षण दिया हुआ है, उसे हृदयंगम करने से ही उपासना का प्रतिफल मिलता है। क्या शिक्षण दिया हुआ है? पंचोपचार में पाँच चीजें आती हैं। जब इसमें से एक चीज चढ़ाया करें, तब अपनी विचारणा को, विचारों को उन वस्तुओं के साथ उसी प्रकार से लगा लिया करें, जिसका शिक्षण उसका आधार बनाया गया है। क्या आधार

बनाया गया है? सबसे पहले हम जिस देवता का पूजन करते हैं, जल चढ़ाते हैं और मंत्रोच्चार करते हैं—**पाद्यं समर्पयामिः, अर्घ्यं समर्पयामि, आचमनं समर्पयामिः**। ये तीन चीजें हैं। तीन चम्मच जल से यह प्रक्रिया पूरी होती है। बेटे, तू यह तीन चम्मच से कराता है या तीन बालटी से? महाराज जी, मैं तो तीन चम्मच से कराता हूँ और कहता हूँ, '**स्नानं समर्पयामि**'। अच्छा बता, तीन चम्मच से तू कैसे नहा लेगा? इस चम्मच से या तो तू नहा ले या अपने बच्चे को नहला ले। जब तेरा बच्चा नहा लेगा, तब हम जानेंगे कि भगवान को नहला सकता है। नहीं महाराज जी, मैं तो ऐसे ही कर देता हूँ '**आचमनं समर्पयामि**'। अच्छा बेटे, तो यह बता कि जब कुल्ला करता है तो कितना पानी खरच कर देता है? महाराज जी, एक लोटा तो खरच हो ही जाता है, हाथ-मुँह धोने और कुल्ला करने में। अच्छा तो अब तू ही बता कि एक चम्मच जल से भगवान जी का होठ भी गीला नहीं होगा, फिर

आचमन क्या कराता होगा? भगवान से मखौल करता है,दिल्लगीबाजी करता है और कहता है कि एक चम्मच जल से भगवान जी को स्नान कराता हूँ। बेटे, भगवान का पूजन इस तरह से नहीं होता।

महाराज जी! आपने ही तो बताया था यह। बेटे, मैंने तो बहुत सी बातें बताई थीं, वह तो याद नहीं रखीं, केवल क्रिया याद रखी। यह याद नहीं कि जल चढ़ाते समय क्या वृत्ति रहनी चाहिए? उस समय यह वृत्ति रहनी चाहिए कि हम अपने आप का समर्पण करें। देवता से माँगना मत, वरन यह भाव व्यक्त करना कि हम आपको समर्पण करेंगे। आपको हम देंगे। जो देता है,वही देवता कहलाता है। देवताओं ने भगवान को दिया है और आपको भी देवता की कृपा प्राप्त करने के लिए देने की वृत्ति सीखनी पड़ेगी। जब तक आपके अंदर देने की वृत्ति नहीं आएगी, कोई भी देवता आपके ऊपर कृपा नहीं कर सकता।

देने का भाव सदा मन में हो

मित्रो, देने की वृत्ति का अर्थ यह है कि हम जो जल चढ़ाते हैं, उसके पीछे भगवान को यह आश्वासन दिलाते हैं कि हमारी पसीने की बूँदें, हमारे श्रम की बूँदें, हमारी मेहनत, हमारा वक्त और हमारा समय आपके कामों के लिए लगा करेगा। जल चढ़ाते समय हम बार-बार विचार करते हैं कि हमारा श्रम अर्थात पसीने की बूँदें, जो जल का प्रतीक हैं, हमारी मशक्कत का प्रतीक हैं, हमारी मेहनत का प्रतीक हैं, अपने समय का हिस्सा है, ये समाज के लिए, देश के लिए, संस्कृति के लिए, धर्म के लिए अर्थात भगवान के लिए लगा करेगा। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, यह आप ध्यान रखना। भगवान के लिए हम देते हैं। कहाँ है भगवान? साहब, वह तो मंदिर में बैठा हुआ है। नहीं बेटे, जो मंदिर में बैठा हुआ है, वह तो कोई खिलौना है। फिर कहाँ है भगवान? मनुष्य की श्रेष्ठता के रूप में, ऊँचे समाज के रूप में भगवान है। भगवान

ने जब अर्जुन को, यशोदा माता को अपना विराट रूप दिखाया था, तो सारे समाज के रूप में दिखाया था। समाज ही भगवान का रूप है। समाज की सेवा के लिए, लोकहित के लिए, लोकमंगल के लिए तू जो पसीना बहाता है, श्रमदान करता है, वास्तव में यह जल चढ़ाना उसी का प्रतीक है।

ध्यान के लिए भगवान को रिश्तेदार बनाइए

भगवान निराकार है। निराकार भगवान श्रेष्ठ विचारणा के रूप में, आदर्शों के रूप में, सिद्धांतों के रूप में है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। महाराज जी, हमने तो व्यक्ति बना रखा है। बेटे, हमने उसे ध्यान के लिए बना रखा है। ध्यान करने के लिए किसी न किसी चीज पर मन को एकाग्र करना पड़ता है, इसलिए ध्यान में एकाग्रता के लिए हम कोई न कोई शक्ल बना लेते हैं और केवल शक्ल ही नहीं बनाते, वरन उससे कोई न कोई रिश्ता भी कायम कर लेते हैं, जबकि भगवान किसी

का रिश्तेदार नहीं है। बिजली किसी की रिश्तेदार नहीं है। नहीं महाराज जी, भगवान हमारा रिश्तेदार है। बेटे, भगवान को हमें रिश्तेदार बनाना पड़ता है, ताकि मनुष्य का ध्यान उनमें लगा रहे। ध्यान की तीव्रता के लिए, मन की चंचलता को दूर करने के लिए, मन की वृत्ति को ध्यान में लगाए रखने के लिए हम किसी न किसी रूप की कल्पना करते हैं। कल्पना करने के पश्चात उसमें अपना मन लगाए रहते हैं। यह मन को एकाग्रचित्त करने का तरीका है।

मित्रो, असल में भगवान एक ही है। अगर दुनिया में इतने तरह के देवी-देवता होते, तो आपस में मार-काट फैल जाती, लड़ाई-झगड़ा होता, मुकदमेबाजी शुरू हो जाती, फिर फौजदारी खड़ी हो जाती। ये संतोषी माता, वह काली माता। काली माता कहतीं कि हमारे अच्छे चेले को संतोषी माता झटक ले गईं। अच्छा मैं उनके बाल उखाड़ूँगी। संतोषी माता का चेला, जो कल तक शुक्रवार के

दिन खटाई-मिठाई नहीं खाता था, अब रात्रि में चंडी की पूजा करने लगा, तो संतोषी माता गाल फुला के बैठ गईं। संतोषी माता का चेला चंडी के यहाँ और चंडी माता का चेला संतोषी माता के यहाँ चला गया, तो वे आपस में लड़ मरेंगी। जिस तरह औरतों में लड़ाई होती है, चेलों में लड़ाई होती है, सबमें लड़ाई होती है, उसी तरह देवी-देवताओं में लड़ाई होती और सबके कचूमर निकल पड़ते। तो महाराज जी, यह क्या चक्कर है? बेटे, कोई चक्कर नहीं है। दुनिया में भगवान एक ही है। तो अनेक तरह के देवी-देवता क्या हैं? ये बेटे कल्पनाएँ हैं। कल्पना न होती, तो इतने तरह के फरक कैसे हो जाते? अगर दुनिया में हजारों भगवान होंगे, तो मुश्किल आ जाएगी। भगवान एक है, अनेक भगवान नहीं हैं। फिर दुनिया में तरह-तरह की शक्लों वाले भगवान कैसे हो गए? बेटे, मुसलमानों ने अपना दाढ़ी वाला बना लिया है, हमने अपना मोर-मुकुट वाला बना लिया है। अमुक ने

अपना अमुक तरह का बना लिया है, ये सब कल्पनाएँ हैं।

तो महाराज जी, असली भगवान क्या है? बेटे, उच्च एवं श्रेष्ठ विचारणा के समुच्चय को, उत्कृष्टता के समुच्चय को, सद्‌गुणों के समुच्चय को भगवान कहते हैं। बेटे, भगवान जब कभी आता है, तो श्रेष्ठ विचारों के रूप में आता है, आदर्श उत्कृष्टता के रूप में आता है। उत्कृष्ट चिंतन के रूप में आता है, शक्ल के रूप में नहीं आता। महाराज जी, हमने रात को हनुमान जी को देखा। तो देखा होगा, अच्छी बात है। बेटे, भगवान करे तुझे रोजाना दिखाई पड़ें। महाराज जी, हमें तो कल लक्ष्मी जी दिखाई पड़ीं। बेटे, लक्ष्मी जी दिखाई पड़ीं तो तुझे कुछ रुपया-पत्ता भी दे गईं कि नहीं? नहीं महाराज जी, दे-दिवा तो कुछ नहीं गईं। बेटे, तूने ख्वाब देख लिया है,अन्यथा यदि लक्ष्मी जी तेरे घर आई होतीं, तो खाली हाथ क्यों चली गईं, कुछ तो दे जातीं। नहीं साहब, कुछ दिया तो नहीं है, वैसे ही शक्ल दिखाकर भाग गईं।

नहीं बेटे, ये तेरे अपने जाल-जंजाल हैं, मैं इन पर विश्वास नहीं करता।

आदर्शों का समुच्चय भगवान

श्रेष्ठता के प्रति, आदर्शों के प्रति, जिसको मैं भगवान कहता हूँ, उस श्रेष्ठता का, आदर्शों का जिन्होंने पालन किया, वह भगवान के भक्त कहलाए और भगवान के अनुग्रह के अधिकारी होते चले गए। देवपूजन के साथ जुड़े हुए जो श्रेष्ठता के विचार हैं, वही हमारे विचार होने चाहिए कि हम अपना श्रम, अपना पसीना अच्छे उद्देश्यों के लिए, श्रेष्ठ कामों के लिए निरंतर खरच किया करेंगे। आप जितनी देर तक जल चढ़ाया करें, आचमन चढ़ाया करें, पानी चढ़ाया करें, उतनी देर तक अपने विचारों को इस तरह घुमाते रहें कि हम अपना श्रम यानि पसीना लोकहित के लिए समर्पित करेंगे। जब अक्षत चढ़ाएँ, '**अक्षतं समर्पयामि**' तब क्या विचार करना चाहिए? महाराज जी, अक्षत से क्या फायदा है? बेटे, अक्षत से आपके विचार से यह फायदा है कि

गणेश जी को कोई खाना दे जाता है, कोई नहीं देता। तो जो वह चार-पाँच चावल तू उन पर फेंक देता है, तो गणेश जी खा जाते हैं, उनके चूहे खा जाते हैं। नहीं महाराज जी, चार-पाँच चावलों से क्या हो जाता है? बेटे, कुछ भी नहीं होता।

महाराज जी, तो फिर हम चावल क्यों चढ़ाते हैं? चावल हम इसलिए चढ़ाते हैं कि अपने आप को हम शिक्षित करें कि देख भुलक्कड़, तुझे सब कुछ पाकर सब कुछ याद है। अपनी नौकरी और प्रमोशन याद है, अपने बेटे को वकील बनाना भी तुझे याद है, पर यह याद नहीं है कि इतने करोड़ों रुपए मूल्य का यह जो जीवन भगवान ने दिया है, उसका भी कुछ कर्ज चुकाना है। उसकी भी कुछ ब्याज देनी है। उसकी भी कुछ सेवा करनी है, इसलिए हम चावल लेकर रोजाना अक्षत चढ़ाते हैं और ये कहते हैं कि अपनी कमाई का एक अंश आपको निष्ठापूर्वक (अक्षत की तरह बिना टूटे) नियमित रूप से देते रहेंगे। आप हमारी जिंदगी के

हिस्सेदार हैं। आप हमारे शेयरहोल्डर हैं। ये हमारी जिंदगी की दुकान है। इसमें अकेले मनुष्य का ही हिस्सा नहीं है। इसमें कुछ भगवान का भी हिस्सा है। इसमें भगवान की भी कुछ पूँजी लगी हुई है। इसमें भगवान ने भी कुछ रकम लगाई है। भगवान की मशीनें इस फेक्टरी में काम कर रही हैं। इसमें सब कुछ आपका ही नहीं है। आपकी अपनी अक्ल है, पर बेटे, सारी की सारी मशीनें तो किराये की हैं। तुझे मालूम नहीं है क्या कि जिससे तू देख रहा है, जिसकी अक्ल तू ले रहा है, जो कंप्यूटर तेरे दिमाग में फिट किया हुआ है, यह तेरा नहीं है। यह किसी और का है। उसका भी कुछ शेयर है। क्या सारा माल तू ही हजम कर जाएगा कि उसको भी कुछ देगा? तो क्या महाराज जी, उसको भी कुछ देना पड़ेगा? हाँ बेटे, क्योंकि इसमें सारा धन उसी का लगा हुआ है। तू तो केवल उसकी फेक्टरी में काम करता है। तू तो काम करने वाला मुनीम है, मालमत्ता तो सारा उसी का है।

भगवान के लिए निकालिए अपना एक अंश

इसलिए मित्रो, जो अक्षत-चावल हम चढ़ाते हैं, उसके पीछे यह शिक्षण छिपा हुआ है कि हमारे मन में इस वृत्ति या भावना का उदय होना चाहिए कि हमारी कमाई का एक अंश ब्याज के रूप में, कर्ज चुकाने के रूप में अपने शेयरहोल्डर का, अपने पार्टनर का हिस्सा-शेयर अपने हिस्से में से हमको निरंतर देना पड़ेगा। तो हम निरंतर देते रहेंगे। भगवान को हम अपना रिश्तेदार मानते हैं। चलिए आप भगवान को अपना रिश्तेदार तो क्या मानेंगे, अपना बेटा ही मान लें। साहब, हमारे चार बेटे हैं, तो पाँचवाँ बेटा हम भगवान को भी मान सकते हैं। नहीं महाराज जी, भगवान तो हमारा गुरु है। नहीं बेटे, गुरु तो मत मान, बेटा ही मान ले। अब तुझे क्या करना पड़ेगा? चार बेटों को खिलाता-पिलाता है। हाँ गुरुजी, उन्हें खिलाता-पिलाता हूँ, कपड़े पहनाता हूँ। तो बेटे पाँचवें को भी पहना। पाँचवाँ कौन सा है? भगवान। अच्छा बेटे, एक पर कितना

खरच आता है? महाराज जी, किसी की पढ़ाई में ढाई सौ रुपए महीना खरच करता हूँ, किसी में सवा सौ रुपए खरच करता हूँ, किसी में पौने दो सौ रुपए खरच करता हूँ, किसी में चालीस रुपए खरच करता हूँ। बेटे, एक और को भी ले ले। नहीं महाराज जी, भगवान को तो मैं धूपबत्ती खिलाऊँगा। और बेटे को? बेटे को जलेबी खिलाऊँगा। अच्छा तो बेटे को भी धूपबत्ती खिला? नहीं साहब। अपने बेटों को जलेबी खिलाएगा और भगवान को धूपबत्ती खिलाएगा, बदमाश कहीं का।

मित्रो, क्या करना पड़ेगा? हमको वास्तविकता के धरातल पर उतरना पड़ेगा। हमको यथार्थता पर आना पड़ेगा। हमको यह मानकर चलना पड़ेगा कि भगवान हमारा कोई रिश्तेदार है। भगवान ने हमारे जीवन में कितनी ज्यादा सुविधाएँ और संपदाएँ दी हैं? उसके लिए हमको कुछ करना चाहिए। हमारा अक्षत, हमारे चावल, हमारा श्रम, हमारी कमाई, हमारा उपार्जन, जिसमें पैसा भी शामिल है, बुद्धि भी

शामिल है, भाव भी शामिल है, प्रतिभा भी शामिल है, इसका एक हिस्सा लोकहित के लिए है। वह समाज के कल्याण के लिए, देश के लिए, धर्म और संस्कृति के लिए खरच होना चाहिए। जब आप अक्षत चढ़ाएँ, तो साथ-साथ में ये विचार ये भाव भी करते जाएँ।

महाराज जी, ऐसा ध्यान बताइए कि जिससे मन एक जगह एकाग्रचित्त हो जाए। मन कहीं भागे नहीं। बेटे, ऐसा एकाग्र मन, जैसा तू चाहता है, कैसे हो सकता है? तूने अभी मनोविज्ञान पढ़ा नहीं है, न्यूरोलॉजी पढ़ी नहीं है, इसलिए तू बोलता रहता है कि मन एक बिंदु पर एकत्र हो जाए। बेटे, मन एक बिंदु पर हो ही नहीं सकता। हम जो साकार उपासना बताते हैं, गायत्री माता की उपासना बताते हैं, उसमें गायत्री माता के एक हाथ में कमंडल, एक हाथ में पुस्तक, एक हंस, एक मोर-मुकुट है। ये क्या चीज हैं? यह क्या चक्कर है महाराज जी? बेटे, चक्कर यह है कि मन को सीमाबद्ध करने के

लिए उसे इतने बड़े दायरे में घुमाना पड़ेगा। कभी कमल को देख, कभी हंस को देख, कभी मुकुट को देख, कभी उनके होठों को देख, कभी साड़ी को देख, कभी इसको देख। इतने ही दायरे में जब मन भागेगा, तो जो मन कभी भी घंटों में ध्यान से नहीं रुकता था, वह इतने ही दायरे में यहाँ-वहाँ भागता रहेगा। मन एक सीमा में भागता रहेगा, एक सीमा में घूमता रहेगा।

ऐसे आएगी तन्मयता-एकाग्रता

मित्रो, ध्यान में मन को एक सीमा में घुमाया जाता है। एक मिनट के लिए भी अगर मनुष्य का मन एकाग्र हो जाता है, तो मनुष्य समाधि में चला जाता है। बार-बार मन को एकाग्र करने की बात करता है कि हमारे मन को एकाग्र कर दीजिए। मनुष्य समझता नहीं कि मैं क्या कह रहा हूँ। अगर मन एक बिंदु पर एक मिनट के लिए भी इकट्ठा हो जाए, तो वह समाधि में चला जाएगा, बेहोश हो जाएगा, इसलिए हम कहते हैं कि एकाग्रता का

मतलब होता है—एक धारा, एक दिशा। सवेरे जब हम आपको ध्यान कराते हैं एक धारा देकर, एक दिशा देकर। मन को एकाग्र होने का दावा नहीं करते, वरन एक दिशा देते हैं। वैज्ञानिकों की एक दिशा होती है, एक धारा होती है। प्रयोग-परीक्षण करके वह सिद्ध कर देता है कि इसमें ये कैमीकल मिल जाएगा तो ये हो सकता है। ये मिल जाएगा, तो अमुक हो सकता है। सारी की सारी इतनी शतरंज बिछी हुई है कि पास में से चूहा गया है, तो यह मालूम नहीं है, क्योंकि उसे अपने काम की जल्दी पड़ी है। वह उसके साथ एकाकार हो गया है, एकाग्र हो गया है।

महाराज जी, अभी तो आप कह रहे थे कि वह हजारों तरह के विचार करता है। हाँ बेटे, हजारों तरह के विचार करता है। उसे मैं एकाग्रता कहता हूँ। उसकी इच्छा एक है, दिशा एक है। अपने उद्‌देश्य से एक हो गया है, बस इतनी एकाग्रता हो सकती है। अंतर केवल इतना है कि आप जो विचार

करते हैं, वह असंभव विचार करते हैं। मन कहीं भागने ही न पाए, एक विशेष अवस्था में लगा रहे, यह हो सकता है। बेटे, जब हम लेख लिखते हैं, तो एकाग्र हो जाते हैं। लोकमान्य तिलक के पैर का ऑपरेशन होने वाला था। डॉक्टरों ने उनसे कहा कि आपको बेहोश करना पड़ेगा। उस जमाने में बेहोशी का तरीका बहुत घटिया था। एक बार क्लोरोफार्म सुँघा दिया, तो महीने भर तक उलटियाँ आती रहती थीं, सिर चकराता रहता था। बहुत शिकायतें रहती थीं। उन्होंने कहा कि महीनेभर तो आपको दिक्कत रहेगी। तिलक ने कहा कि फिर तो महीनेभर में मेरा काम बड़ा हर्ज होगा। आप ऐसा कीजिए कि बिना बेहोशी के ही ऑपरेशन कर दीजिए, मैं चिल्लाऊँगा नहीं।

डॉक्टर ने कहा, आप चिल्लाएँगे। उन्होंने कहा, बिलकुल नहीं, लाइए हम अपनी गीता की पुस्तक पढ़ना शुरू करते हैं। इसे पढ़ने में हम इतना तन्मय हो जाएँगे कि इतने समय में आप मुझे काटकर पटक

देना। अच्छी बात है। तिलक ने गीता की पुस्तक मँगाई। उन्होंने अपनी टाँग लंबी कर दी और पढ़ने में तन्मय हो गए। ध्यान से सुनना, वे पुस्तक में से पढ़ने लगे, "**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥**" और वे समाधि में चले गए। डॉक्टर ने झट से पाँव का ऑपरेशन करके रुग्ण भाग को काटकर फेंक दिया। उन्होंने कहा कि ऑपरेशन हुआ कि नहीं हुआ। अरे हो तो गया। बहुत जल्दी ऑपरेशन कर दिया।

हो एक विषय पर गहरा चिंतन

बेटे, यह क्या बात है? ध्यान का खेल है। ध्यान की बात यह है कि एक विषय पर, एक धारा पर, एक सब्जेक्ट पर आदमी इतनी गहराई से चिंतन करे कि बाकी बातों को, सबको भूल जाए, केवल ध्यान की बात रह जाए। जब हम लेख लिखते हैं, तब इतने एकाग्र हो जाते हैं कि हमें पता ही नहीं चलता कि कौन बैठा हुआ है और कौन चला गया?

कौन आ गया और कौन क्या कर गया, कुछ पता ही नहीं चलता। बस हम अपने काम में लगे रहते हैं। उस समय हमारे मन की दिशा एक होती है और इतने तरह के विचार आते हैं, इतने रिफरेंस आते हैं कि अमुक विद्वान ने ये कहा, उसने ये कहा। हमारे हाथ लिखते चले जाते हैं और हमारे दिमाग की फिल्म इतनी तेजी से दौड़ रही होती है कि सिनेमावाली फिल्म तो एक कोने पर रखी रहेगी। हजारों किताबें हमारे दिमाग में मिनटों और सेकंडों में घूमती चली जाती हैं। इस तरह हमारे दिमाग की चाल तेज होती है। अगर आप लोग कभी हमारे दिमाग की चाल को देख लें, तो कहेंगे कि महाराज जी, ऐसी चाल तो हमने कभी देखी नहीं। बेटे, तूफान की चाल और हमारे दिमाग की चाल एक होती है, जो एकाग्र होती है।

महाराज जी, जब हम एकाग्र होते हैं, तो स्थिर नहीं होते। बेटे, एकाग्र होना अलग बात है और स्थिर होना अलग बात है। समझता तो है

नहीं और चिल्लाता रहता है कि हमारे मन को स्थिर कर दीजिए। कैसे स्थिर कर दें, खा जा अफीम की गोली, फिर स्थिर कर देंगे। सनक में डूबा रहेगा और कहेगा कि महादेव जी दिखते हैं। ऐसे कोई स्थिर नहीं होता। मीरा जो थी, हमेशा कहती रहती थी—"**घायल की गति घायल जाणै, जो कोई घायल होय।**" हर वक्त वह बेचैन मालूम पड़ती थी। रामकृष्ण परमहंस उछलते रहते थे। चैतन्य महाप्रभु जब चिंतन करते थे, तो उछलकर बेहोश हो जाते थे और कीर्तन करते थे। वे एकाग्रचित्त हो जाते थे। अरे, कैसे एकाग्र हो जाएँगे? एक विषय पर, एक धारा पर आदमी का दिमाग लगा रहे, तो वह एकाग्र हो जाता है, लेकिन एक तरह के विचारों पर बहुत देर तक आदमी का मन स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए हम सवेरे भी आपको ध्यान कराते हैं, छोटे-छोटे पीसों में कराते हैं। अलग-अलग तरह के वैराइटीज में कराते हैं, ताकि आपको एक विचार के ऊपर, एक क्रियापद्धति पर ध्यान को लगाने

का, सीखने का मौका मिले। आपको यही करना चाहिए।

मित्रो, उपासना का जब समय आए, तो आप अपनी उपासना के समय जो क्रिया कृत्य करते हैं, तो उसके पीछे जो शिक्षण दिए गए हैं, उनके साथ अपने आप को मिलाइए। जब आप देवता को फूल चढ़ाते हैं, तो इस चक्कर में मत पड़िए कि साहब, ये चमेली का फूल है कि गेंदा का फूल है कि गुलाब का फूल है या बेला का फूल है। महादेव जी न आक का फूल खाते हैं, न गणेश जी चमेली का फूल खाते हैं और न विष्णु भगवान गुलाब का फूल खाते हैं। ये बेकार की बातें छोड़िए और सोचिए कि आदमी का जीवन फूल जैसा होना चाहिए। फूल जैसा कोमल जीवन होगा, तो भगवान के चरणों में भी स्थान मिल सकता है, गले में भी स्थान मिल सकता है, सिर में भी वे स्थान दे सकते हैं। हर जगह स्थान मिल सकता है। शर्त केवल यह है कि हम फूल जैसे जीवन के हों। हँसता हुआ

जीवन, कोमल एवं फूल जैसा मुलायम जीवन, सुगंधित जीवन बनाने की हम कोशिश करें।

हर वस्तु अर्पण के साथ गुणों का चिंतन

इन विचारों के साथ जब आप फूल चढ़ाया करें, तो यही विचार करें कि हम अपना जीवन फूल जैसा बनाएँगे। हमारा जीवन फूल जैसा बनना चाहिए। फूल जैसा जीवन बनाना अपना उद्देश्य होना चाहिए। फूल चढ़ाता रहे और बेकार की बातें सोचता रहे कि गुलदस्ता बनाऊँ या माला बनाऊँ, ये करूँ या वो करूँ। इन बेकार की बातों में अपना समय खराब करता रहता है और यह नहीं सोचता कि हमको अपना जीवन फूल जैसा बनाना है।

मित्रो, हम जब दीपक चढ़ाते हैं, उस समय हमारा विचार होना चाहिए कि भगवान को दीपक दिखाने की जरूरत नहीं है। भगवान के पास तो दो दीपक जलते ही रहते हैं। दिन में सूरज जलता रहता है और रात में चंद्रमा जलता रहता है। आप भगवान के लिए दीपक नहीं जलाएँगे तो भगवान

का कोई हर्ज नहीं हो सकता। महाराज जी फिर तो हम बार-बार दीपक जलाने में पैसा क्यों खरच करें? क्यों बार-बार दीपक जलाएँ? बेटे, उसका भी एक कारण है। एक ऐसा बेवकूफ आदमी है, जो आँखों से अंधा है, जिसको कुछ दिखाई नहीं पड़ता। उसके सामने दीपक दिखाओ तो कुछ तो दिखाई पड़े। कौन है वह बेवकूफ और अंधा आदमी? वह है तू और हम, जिनको अंधे कह सकते हैं। जिन्हें कुछ पता ही नहीं है, कुछ दिखता ही नहीं है, कुछ सूझता ही नहीं है। जिन्हें न अपना मरना दीखता है और जीना दीखता है। बस एक ही चीज दिखती है—विलासिता, एक ही चीज दिखती है—तृष्णा, एक ही चीज दिखती है—वासना, एक ही चीज दिखती है—भोग, एक ही चीज दिखती है—लोभ। वह एक ही चीज देखता है और कुछ नहीं। उसकी आँखें खराब हैं। उसे मोतियाबिंद की शिकायत है। अतः अँधेरे में भटकने वालों को रोशनी की जरूरत है।

दीप प्रज्वलन का अर्थ रोशनी भरा जीवन

मित्रो, इसलिए हम भगवान के सामने दीपक जलाते हैं, ताकि भगवान के बहाने हम अपने आप को देख सकें कि हमारी जिंदगी का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जैसा कि दीपक का है। रोशनी, रोशनी माने जीवन। रोशनी कैसी, जैसे दीपक की, बिजली की। महाराज जी दीपक की, बिजली की बत्ती तो मैं रोजना ही जलाता रहता हूँ। नहीं बेटे, उससे हमारा मतलब नहीं है। रोशनी से हमारा मतलब, **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** से है। इससे है कि हमको अंधकार से प्रकाश की ओर लेकर चलिए। इसका मतलब ये नहीं है कि टार्च आ गया और उसे जलाते चलिए और आकर के हमको अँधेरे में से ले चलिए। हमारा मतलब इस चमक की रोशनी से नहीं है, वरन रोशनी से हमारा मतलब है, ज्ञान। दीपक जब हम जलाते हैं, तो इसका मतलब यह है कि हमारा मस्तिष्क ज्ञान से भरा हुआ हो, विचारणा से भरा हुआ हो, प्रज्ञा से भरा हुआ हो, रोशनी से

भरा हुआ हो। अगर हमारा मस्तिष्क इन सबसे भरा हुआ हो, तो हम क्या काम करें? बेटे, तब हम जलने की बात सोचें, जलने की बात सीखें, दूसरों के फायदे की बात सीखें, कुरबान होने की बात सीखें, समन्वय की बात सीखें, शरणागति की बात सीखें, विसर्जन की बात सीखें, विलय की बात सीखें। नहीं साहब, हम तो लेने की बात सीखेंगे। नहीं बेटे, लेने वालों को यह कंपनी नहीं है, यह देने वालों की है।

बेटे, तू कौन सी कंपनी में दाखिल हो गया है? अरे महाराज जी, मैं तो भजन करने वालों में आ गया। इसमें क्यों आ गया? महाराज जी, इसमें इसलिए आ गया कि भजन करने वालों को बड़ा नफा होता है। अरे बेटे, तुझे किसी ने गलत बहका दिया है। भजन करने वालों को इसमें नफा नहीं होता और अगर होता भी है, तो उनको तो ऐसा शाप लगा हुआ है कि वह स्वयं नहीं खा सकते हैं, केवल दूसरों को खिला सकते हैं। बाजीगर से

एक बार हमने पूछा क्यों भाई एक बात बताओ कि अभी जो आपने आम के पेड़ से फल तोड़े और डिब्बे में से मिठाई निकाली और सबको खिलाया। क्या यह सच्ची मिठाई है ? हाँ साहब, सच्ची मिठाई है। तब तो आप रोजना मिठाई बनाते होंगे और अपने बाल-बच्चों को खिलाते होंगे। नहीं साहब, इसको हम नहीं खा सकते। किसी और को खिला सकते हैं। क्यों, आप भी खा लिया करो। नहीं साहब, हम स्वयं नहीं खा सकते, औरों को खिला सकते हैं।

भगवत्कृपा से जुड़ा एक शाप

मित्रो, भगवान की दया में, कृपा में एक शाप लगा हुआ है कि यदि आप उसे खाने की कोशिश करेंगे, तो वह आपके पास नहीं रह पाएगी। आप खिला सकते हैं, खा नहीं सकते। संत खा नहीं सकता। संतों ने जब खाना शुरू कर दिया, तो संत का संतपन उसी दिन खत्म हो गया। भगवान हमको दीजिए, भगवान हमको दीजिए। बेटे, भगवान देता

तो है, पर उसकी कृपा पारे की तरह है। पारे को आप देख लीजिए और दिखा लीजिए, पर खाइए मत। भगवान की कृपा को भी खाना मत। संत खाते नहीं हैं, ऋषि कभी खाते नहीं, तपस्वी कभी खाते नहीं। अगर आप भगवान की कृपा को स्वयं खाना शुरू करेंगे, तो फिर आपकी देने की ताकत खत्म हो जाएगी। खा लीजिए, फिर देखिए आप किसी को कुछ दे नहीं सकते, किसी की सहायता नहीं कर सकते। आप चाहें कि खाने के बाद में हम अध्यात्म से किसी का फायदा कर दें, तो आप नहीं कर सकते। पैसा लेकर अनुष्ठान शुरू कीजिए, ठीक है, आपकी जीविका चल जाएगी। उसका प्रभाव होता होगा तो होगा, लेकिन आपकी वाणी के अंदर जो शक्ति है, वह नहीं रहेगी। फिर आप चाहें कि किसी का भला कर दें, तो नहीं कर सकते।

मित्रो, भगवान की कृपा खाई नहीं जा सकती। इस बारे में मैं लोगों को बताता रहता हूँ

कि तुम्हें भगवान की कृपा से अगर फायदा कराना हो, तो इसकी अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि तुम नौकरी कर लो। धंधा कर लो। नहीं साहब, उसमें कम फायदा होता है। तो बेटे, चोरी कर ले। चोरी करेगा तो तीन महीने की सजा हो जाएगी, लेकिन भगवान की कृपा से तेरा पिंड तो छूटेगा। बेटे, भगवान की कृपा से जो लिया हुआ है या प्राप्त हुआ है, वह सब परमार्थ के लिए होता है, लोकहित के लिए होता है। याद रखिए, भगवान की कृपा से सुख नहीं शक्ति मिलती है। हर एक को शक्ति मिली है, सुख किसी को नहीं मिला है। यदि शक्ति की जरूरत हो तो भगवान की कृपा के चक्कर में फँस और यदि तुझे सुख की जरूरत है, तो भगवान से दूर रहो। हाँ, भगवान से दूर रहने वालों में जितने भी तेरे संसाधन दिखाई पड़ते हैं, हर सांसारिक आदमी उस दृष्टि से गरीब दिखाई पड़ता है, कंगाल दिखाई पड़ता है।

खाना नहीं, खिलाना सीखो

महाराज जी, क्या भगवान की कृपा पाने वाले कंगाल नहीं होते। हाँ बेटे, भगवान जिस पर कृपा करते हैं, उसे कंगाल तो नहीं करते, परंतु यह बात जरूर है कि भगवान की कृपा पाने वाले इतने उदार हो जाते हैं कि वे खा नहीं सकते, खिला सकते हैं। वे खाते नहीं, खिलाते रहते हैं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर को पाँच सौ रुपए महीने नौकरी में मिलते थे। जब वह पाँच सौ रुपए आते थे, तो उनकी अपनी जिंदगी के वे दृश्य सामने आ खड़े होते थे, जब उन्हें बिजली के अभाव में, रोशनी के अभाव में सड़क के किनारे खड़े होकर पढ़ना पड़ता था। सड़क के किनारे लगे खंभों पर जो बिजली जलती है, उसके नीचे खड़े होकर किताब पढ़नी पड़ती थी। सारे विद्यार्थी, जो सड़क के किनारे खड़े होते थे, उनकी आँखों के आगे खड़े हो जाते थे। उन्हें अब पाँच सौ रुपए तनखाह मिलती है। जब पढ़ते थे, तब उनके पास चार आने महीने होते थे, जिसमें से मिट्टी का तेल

खरीदकर उसकी बत्ती के प्रकाश का प्रबंध भी पूरा नहीं हो पाता था। आज उनकी आँखों के सामने इसी तरह के हजारों बच्चे आ खड़े होते और कहते कि हमारी मदद कीजिए।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने निश्चय कर लिया था कि पचास रुपए महीने में हम अपना गुजारा करेंगे और साढ़े चार सौ रुपया महीना उन लोगों के लिए सुरक्षित रखेंगे, जिनकी फीस की जरूरत है, जिनको किताबों की जरूरत है, जिनको दूसरी चीजों की जरूरत है। वे हजारों परेशानियाँ सहते रहे, पर अपना गुजारा पचास रुपए में ही करते रहे। महाराज जी, फिर तो वह गरीब ही रहे अमीर नहीं बन पाए। हाँ बेटे, वह अमीर नहीं बन पाए। संत अमीर नहीं हो सकता। भगवान के भक्त के हिस्से में अमीरी नहीं आई है। वह अमीर बना तो सकता है, पर स्वयं अमीर नहीं बन सकता। गांधी जी ने बादशाह तो ढेरों बनाए, किंतु स्वयं बादशाह नहीं बन सके। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को तो

बादशाह बनाया, पर स्वयं बादशाह नहीं बन सके। चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बादशाह तो बनाया, पर स्वयं बादशाह नहीं बन सके। संत बादशाह नहीं बन सकता, इसलिए यदि संत बनना है, भगवान की कृपा, भगवान की दया प्राप्त करनी है, तो उसे बाँटना सीखिए, दूसरों को खिलाना सीखिए स्वयं मत खाइए। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥

❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)